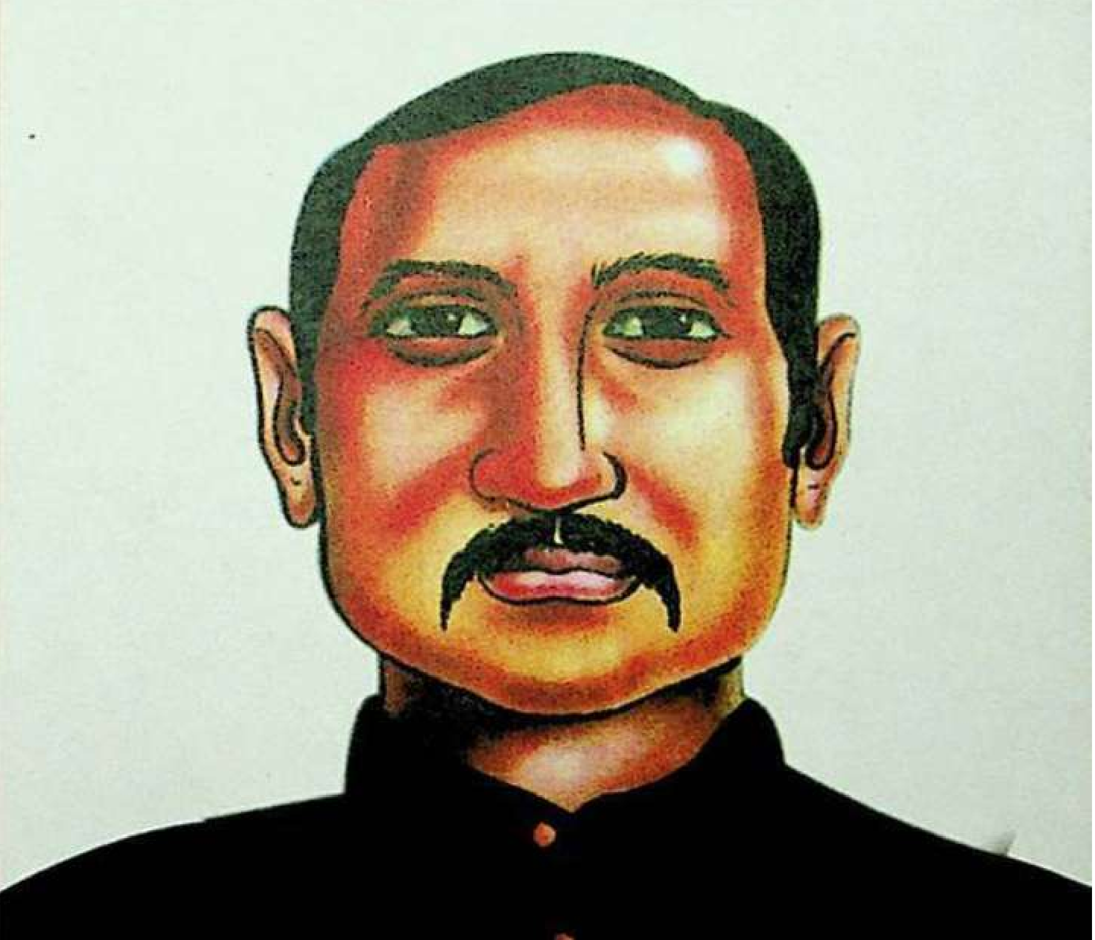
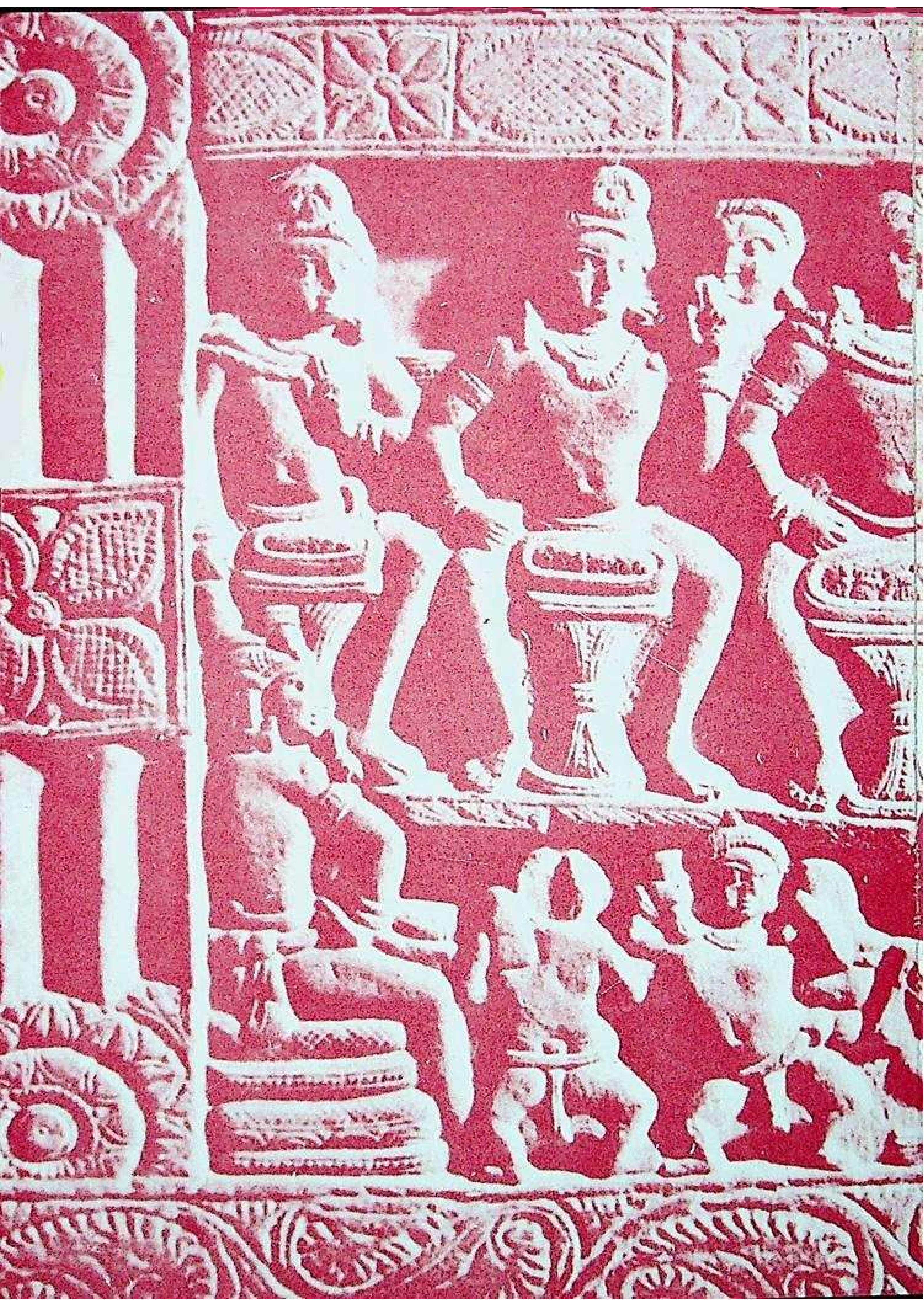
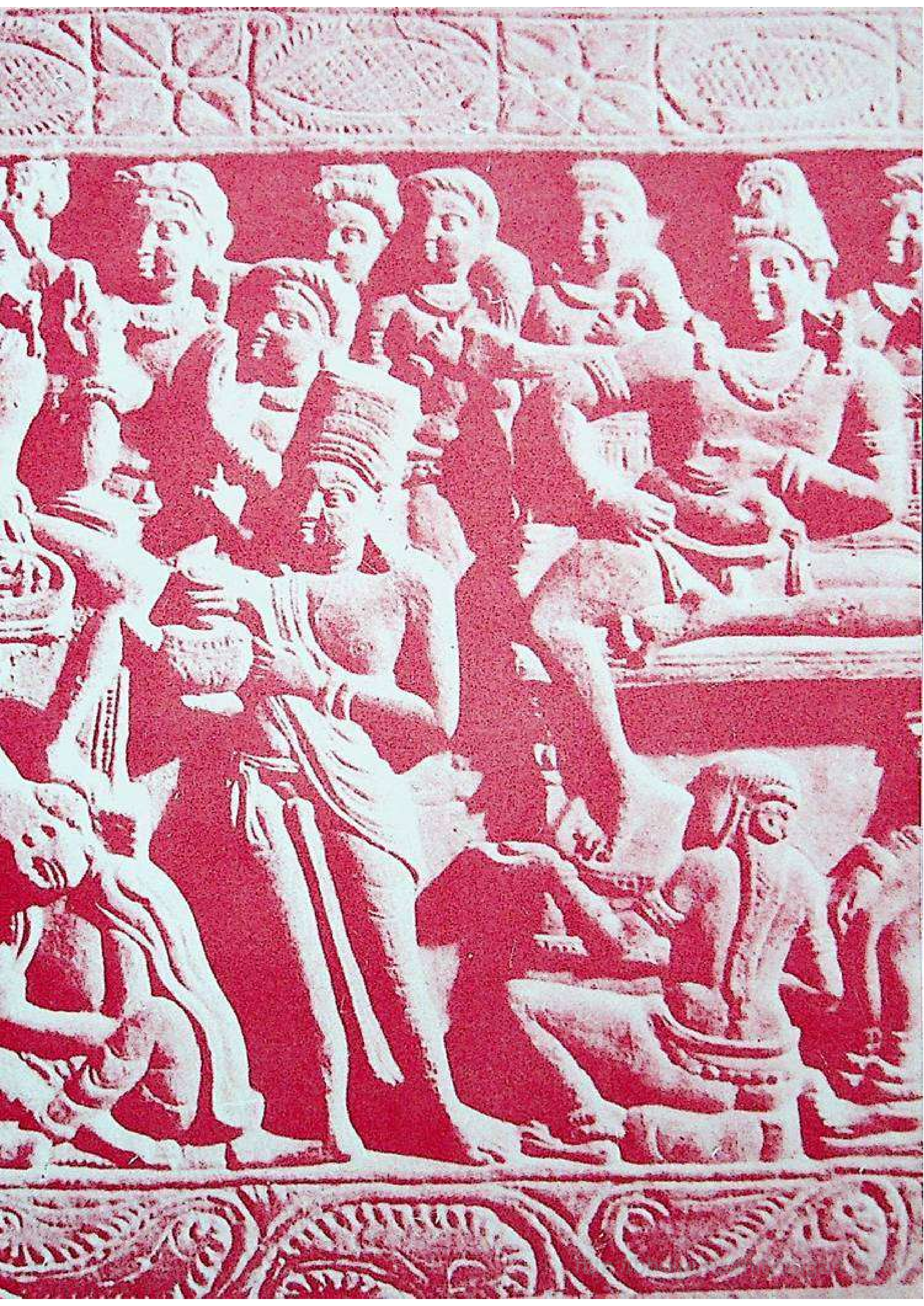
भारतीय साहित्य के निर्माता

महेंद्र मिसिर

भगवती प्रसाद द्विवेदी







भारतीय साहित्य के निर्माता

महेंद्र मिसिर

[illegible] 13.5.2017
दरभंगा,

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ-रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में यह लेखन-कला का संभवत: सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुन कोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

महेंद्र मिसिर

भगवती प्रसाद द्विवेदी

साहित्य अकादेमी

Mahendra Misir : A monograph in Hindi on Modern Hindi writer by Bhagwati Prasad Dwivedi. Sahitya Akademi, New Delhi (2017), Rs. 50.00

प्रथम संस्करण—2017

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवींद्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली-110 001

विक्रय विभाग, स्वाति, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली-110 001

वेबसाइट—www.sahitya-akademi.gov.in

ई-मेल—sales@sahitya-akademi.gov.in

क्षेत्रीय कार्यालय

172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई-400 014

4, डी.एल. ख़ान मार्ग, कोलकाता-700 025

सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी. आर. आंबेडकर वीथी, बेंगळूरु-560 001

चेन्नई कार्यालय

मेन बिल्डिंग, गुना बिल्डिंग्स (द्वितीय तल), 443 (304)

अन्नासालइ, तेनामपेट, चेन्नई-600 018

ISBN 978-81-260-5295-0

मूल्य : पचास रुपये

टाइप सेटिंग—हर्ष कंप्यूटर्स, अग्र नगर, प्रेम नगर-3, किराड़ी, दिल्ली-110 086

मुद्रक—विकास प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

प्राक्कथन

साहित्य की दो धाराएँ साथ-साथ बहती रहती हैं—'लोक' और 'शिष्ट'। लोक-साहित्य लोक अथवा जन, यानी धरती से रचे-बसे मेहनतकशों, कृषकों व मज़दूरों को केंद्र में रखकर रचा जाता रहा—लोक को ध्यान में रखकर, लोक की ज़ुबान में। दूसरे क़िस्म के साहित्य का सृजन सिर्फ़ प्रबुद्ध वर्ग के लिए होता रहा। मगर 'लोक' से उपजे लोग ही जब अपनी जड़ों को भूलने लगे और स्वयं को 'शिष्ट-विशिष्ट' के विभूषणों से अलंकृत करने लगे, तब से क्रमशः 'लोक' का लोप होता चला गया। फलतः अधिकांश लोक-साहित्य के रचयिताओं ने अपना नाम गुप्त ही रखा और यह परंपरा ही चल निकली। मगर लोकभाषा के अमर कवियों—कबीर, तुलसी आदि के काव्य की जन-जन में व्यापकता व अमरत्व को निरखकर तथाकथित बुद्धिजीवियों की बोलती बंद हो गई। भोजपुरी के महेंद्र मिसिर भी उसी परंपरा के रचनाकार थे जिन्होंने खुद को छिपाया नहीं, बल्कि कबीर की तरह ही डंके की चोट पर कहा कि उन्होंने विधिवत विद्यालयी शिक्षा हासिल नहीं की है। मगर आज उनके पूरबी गीतों और भक्ति-काव्य की गूँज न सिर्फ़ भोजपुरी भाषी क्षेत्र में, वरन् पूरे उत्तर भारत तथा विदेशी मुल्कों में जन-जन की ज़ुबान पर है।

बचपन से ही गाँव में पूरबी-सम्राट के रूप में महेंद्र मिसिर की चर्चाएँ अक़्सर सुना करता था। गाँव की मठिया में प्रायः गवनई के कार्यक्रम होते रहते थे और मैं उनमें अवश्य शरीक़ हुआ करता था। पूरबी धुन पर जब गोपी-कृष्ण प्रसंग के गीतों की प्रस्तुति होती तो श्रोता अभिभूत हो जाते थे। पुरानी पीढ़ी के संगीत-प्रेमी लोग महेंद्र मिसिर के नोट छापने और जानी-मानी तवायफ़ों के साथ उनकी अंतरंगता पर भी खुलकर बातें करते थे। संभवतः उन्हीं दिनों मेरे बाल-मन में ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व के प्रति जिज्ञासा और कौतूहल की सृष्टि हुई थी। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गई, मेरी धारणाओं में भी उतार-चढ़ाव होता रहा। बचपन में जिन्हें भाँति-भाँति की अलिखित कहानियों का नायक समझता था, अब वह मेरे मानस-पटल पर लोक संगीत में पारंगत नामी-गिरामी गायक कवि के रूप में प्रतिष्ठित थे। आचार्य पांडेय कपिल के उपन्यास *फुलसुंघी* ने उनके व्यक्तित्व की तरलता को और भी घनीभूत किया। मगर भोजपुरी के पहले

उपन्यासकार रामनाथ पांडेय की कृति *महेंद्र मिसिर* जब छपकर आई तो वह बंगाल के संन्यासी आंदोलन से जुड़े एक महत्त्वपूर्ण स्वातंत्र्य-योद्धा के रूप में हमारे सामने आए। 8-9 अप्रैल, 2000 को महेंद्र मिसिर की जन्मभूमि काहीं-मिश्रवलिया अंचल (सारण) के गाँव अशोकनगर-कोठेया (जलालपुर) में आयोजित अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में शामिल होने पर आयोजन-स्थल का नाम 'महेंद्र मिसिर धाम' देख मैं वाकई अभिभूत हो गया था। अगले दिन उनकी जन्मभूमि के दर्शन, परिजनों से मिलन और गायक गौतम मिश्र के स्वर में उनके गीतों की प्रस्तुति ने सबको सुखद आश्चर्य में डुबो दिया था। फिर तो महेंद्र मिसिर के व्यक्तित्व-कृतित्व पर लिखने की दिली चाहत ने मुझे बेचैन कर दिया था।

जब मेरी कृति *भिखारी ठाकुर—भोजपुरी के भारतेंदु* का प्रकाशन हुआ तो मेरे छात्रजीवन के एक अंतरंग मित्र ने बधाई देने के बाद ज़ोर देकर कहा था कि मैं महेंद्र मिसिर पर भी अवश्य लिखूँ। फिर तो मिसिर जी के जीवन और रचना-कर्म पर मेरे आलेख विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। आज उन पर केंद्रित यह विनिबंध लिखकर आत्मतोष की अनुभूति हो रही है। इस विनिबंध के माध्यम से मिसिर जी के बहुआयामी व्यक्तित्व व सृजन के व्यापक फलक पर मूल्यांकनपरक दृष्टि डालने की कोशिश की है मैंने।

जीवनकाल में ही किंवदंती बन चुके महेंद्र मिसिर की बाबत लोमहर्षक कथाएँ और किंवदंतियाँ तो बहुतेरी गढ़ी गईं, पर मूल्यांकन की दिशा में किया गया प्रयास नगण्य ही रहा है। मिसिर जी की संपूर्ण रचनावली भी प्रकाशन की बाट जोह रही है। भोजपुरी के अंतरराष्ट्रीय फलक तथा महेंद्र मिसिर की जन-जन में व्याप्त प्रचंड लोकप्रियता और उनके कृतित्व की ऐतिहासिक उपादेयता के मद्देनज़र प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थानों को आगे आना चाहिए। तभी महेंद्र-साहित्य का न्यायपूर्ण, संतुलित और सार्थक मूल्यांकन संभव हो सकेगा।

इस विनिबंध-लेखन के लिए मेरे नाम की अनुशंसा व चयन हेतु मैं संबद्ध विद्वानों एवं साहित्य अकादेमी का हृदय से आभारी हूँ। विश्व भोजपुरी सम्मेलन की पत्रिका *समकालीन भोजपुरी साहित्य* के प्रधान संपादक श्री अरुणेश नीरन के प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मुझे इसके लिए अभिप्रेरित किया। अपने गाँव की रामायण-मंडली के अगुआ रहे पं. मंगल मिश्र, परशुराम तिवारी, मथुरा प्रसाद तिवारी, बलिराम शर्मा, शिवनारायण तिवारी की स्मृति को भी नमन करता हूँ जिन्होंने इस माध्यम से कभी लोक संस्कृति को संरक्षित करने तथा उसे जीवंतता प्रदान करने में अग्रणी भूमिका निभाई थी।

—भगवती प्रसाद द्विवेदी

अनुक्रम

व्यक्तित्व के आयाम और जीवन-यात्रा

कृतिकार के मूल्यांकन के क्रम में उसकी कृतियों में कहीं-न-कहीं उसके व्यक्तित्व की छवि और छाप परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से अवश्य परिलक्षित होती है। कुछ रचनाकारों का व्यक्तित्व भी उतना ही रेखांकन-योग्य होता है, जितना उनका कृतित्व। वैसी ही एक नामचीन शख़्सियत का नाम है महेंद्र मिसिर। भोजपुरी के इस गौरव-स्तंभ के बग़ैर भोजपुरी भाषा और साहित्य का इतिहास लिखा ही नहीं जा सकता। उनकी भूमिका ठीक वैसी ही थी, जैसी हिंदी खड़ी बोली में भारतेंदु हरिश्चंद्र की रही है। महेंद्र मिसिर जीवनकाल में ही किंवदंती बन गए थे और उनके जीवन पर फिल्म भी बन चुकी है, हिंदी-भोजपुरी में उपन्यास भी रचे जा चुके हैं। आख़िर क्या थी उनके व्यक्तित्व की विलक्षणता?

पहलवानी की बदौलत गठी हुई कसरती देह। ललाट से फूटती तेजस्विता की आभा। शरीर पर सिल्क का बेशक़ीमती कुरता और धोती। गले में सोने की चमचमाती चेन। मुँह में पान की गिलौरी। ऐसा विलक्षण व्यक्तित्व था पूरबी गीत के बेताज बादशाह महेंद्र मिसिर का, जिनकी शोहरत न सिर्फ़ संपूर्ण उत्तर भारत में, बल्कि फीजी, मॉरीशस, सूरीनाम, हॉलैंड, नीदरलैंड, ट्रीनीडाड, ब्रिटिश गियाना, नेपाल आदि बाहरी देशों के करोड़ों भोजपुरी भाषियों व भोजपुरीवंशियों में आज भी व्याप्त है। पहलवानी, गीति रचना, शास्त्रीय संगीत और अध्यात्म में समान रूप से पैठ रखनेवाले महेंद्र मिसिर का नाम ही अपनी मातृभाषा भोजपुरी से अनन्य अनुराग का द्योतक है, क्योंकि महेंद्र मिश्र के बजाय महेंद्र मिसिर का संबोधन पाकर ही वह गर्व व गौरव का अनुभव करते थे। हालाँकि चंद मशहूर कोठेवालियों के लिए गीत रचने और नोट छापने का धंधा करने की वजह से वह विवादों में भी घिर गए थे, पर उन्होंने इसकी तनिक भी परवाह नहीं की थी। इनके मूल में उनकी सामाजिक व राष्ट्रीय प्रतिबद्धता थी। लोकनाटककार—कवि भिखारी ठाकुर उन्हें अपना गुरु मानते थे और गीत-संगीत की बारीकियों पर विचार-विमर्श करने की गरज़ से हर माह मिसिर जी के गाँव ज़रूर जाते थे।

जन्म और पारिवारिक पृष्ठभूमि

विहार के सारण जिले में छपरा शहर से 12 किलोमीटर उत्तर वनियापुर मार्ग पर जलालपुर प्रखंड के सटे काहीं-मिश्रवलिया गाँव में 16 मार्च, 1886 (मंगलवार) को गायत्री देवी और शिवशंकर मिसिर के लाडले महेंद्र मिसिर का जन्म हुआ था। जन्म-वर्ष के संवंध में विद्वान एकमत नहीं हैं। वावू रघुवंश नारायण सिंह के संपादन में प्रकाशित *भोजपुरी* (मासिक) के फरवरी, 1954 अंक में श्यामानंद सिंह ने अपने आलेख *काहीं-मिश्रवलिया (सारन) के महेंद्र मिसिर* में महेंद्र मिसिर के जन्म का साल सन् 1876 ई. अंकित किया है। कई अन्य साक्ष्यों से भी इसकी प्रामाणिकता सिद्ध होती है। कुछ विद्वानों ने सन् 1866 को उनका जन्म-वर्ष माना है। मगर चूँकि मिसिर जी के वंशजों ने 16 मार्च, 1886 को ही उनकी जन्मतिथि घोषित कर दी थी, अतः अव उसी तिथि का उल्लेख सर्वत्र किया जाता है। पहले काहीं और मिश्रवलिया गाँवों के बीच एक नाला पड़ता था, पर नाले को पाट दिए जाने के बाद दोनों गाँव एक हो गए हैं। काहीं का मतलब ही होता है किनारा, यानी नाले के किनारे का मिश्रवलिया गाँव। मिश्र ब्राह्मणों की बस्ती। जलालपुर बाज़ार की मुख्य सड़क पर मिसिर जी की आदमकद प्रतिमा लगी है जिसका निर्माण और अनावरण 2003 की जयंती पर प्रशंसकों के प्रयास से संभव हो सका था। इस स्थल से पूरव की पक्की सड़क मिसिर जी के दरवाज़े तक जाती है। अपनी जन्मभूमि की वावत स्वयं उन्होंने एक कवित्त की रचना की थी—

मउजे मिश्रवलिया जहाँ विप्रन के ठट्ठ वसे
सुंदर सोहावन जहाँ वहुते मलिकाना है,
गाँवें के पच्छिम विराजे गंगाधर नाथ
सुख के सरूप वरमलोक के निधाना है,
गाँवें के उत्तर से दक्खिन ले सघन वाँस
पुरुव है नारा जहाँ काहीं का सिवाना है,
द्विज महेंद्र दास पुर के ना छोड़ें आस
सुख-दुख सव सह के समय को विताना है।

अपने सृजित ग्रंथ *अपूर्व रामायण* में उन्होंने यह भी लिखा है—

द्विज महेंद्र पंडित रहे, छपरा जिला सुजान,
थाना छपरा ही वसे, मिश्रवलिया है ग्राम।

तेरह सौ बत्तीस में लिखा सुग्रंथ विचार,
नहिं विद्या नहिं बाहुबल, केवल नाम अधार।

कौशिक गोत्रीय इस कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार के पूर्वज उत्तर प्रदेश के लगुनहीं-धरमपुरा गाँव से तीन सौ वर्ष पूर्व आकर वहाँ बस गए थे। छह भाइयों में महेंद्र सबसे बड़े थे। शेष भाई थे—गोरखनाथ, त्रिगुणानंद, बिंदा, केदार तथा बटेश्वर। लगुनहीं-धरमपुरा (कानपुर) के पश्चिमी छोर से पूरब की ओर बढ़ते हुए काहीं-मिश्रवलिया में आ बसे पूर्वज की पाँचवीं पीढ़ी के रूप में महेंद्र मिसिर का जन्म हुआ था। उनके सबसे छोटे भाई बटेश्वर जनवरी, 2009 में दिवंगत हुए। कहा जाता है कि जब गायत्री देवी-शिवशंकर मिसिर लंबे समय तक संतान-सुख से वंचित रहे तो वे शिवभक्त साधु शिवभद्र दास की शरण में गए और उन्हीं के आशीष से पहिलौंठी के पुत्र की पैदाइश हुई थी। नामकरण भी उक्त साधु ने ही किया था। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि चूँकि उनका जन्म अंचल के मशहूर शिव-मंदिर के बाबा महेंद्र नाथ की कृपा से हुआ था, अतः उनका नाम बाबा के नाम पर ही रखा गया था।

मिसिर जी की वंशावली निम्नवत है :

वेद मिसिर
↓
हिता मिसिर
↓
सुखराम मिसिर
↓
शिवशंकर मिसिर
↓

↓	↓	↓	↓	↓	↓
महेंद्र मिसिर	**गोरख मिसिर**	**बटेश्वर मिसिर**	**त्रिगुणा मिसिर**	**बिंदा मिसिर**	**केदार मिसिर**
↓					
हिकायत मिश्र					

महेंद्र मिसिर का ननिहाल यानी माँ गायत्री देवी का मायका सारण के ही प्रतापपुर गाँव में था। अध्यापक श्यामानंद सिंह ने इस तथ्य का भी रहस्योद्घाटन

भोजपुरी के अपने आलेख में किया है कि महेंद्र मिसिर अपनी माँ की इकलौती संतान थे। शेष पाँच भाई उनकी सौतेली माँ के पुत्र थे। माँ गायत्री धर्मपरायण गृहिणी थीं। नारी-स्वर में गाए जानेवाले संस्कार गीत उन्हें कंठस्थ थे और विभिन्न अवसरों पर उनके गाए गीत श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते थे। पिता शिवशंकर मिसिर आध्यात्मिक प्रवृत्ति के गृहस्थ थे और पूजा-पाठ में उनकी गहरी आस्था थी। वह कर्मकांडों के भी ज्ञाता थे और गाँव-जवार में उन्हें मान-सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। जब माँ-पिता के पूजा-पाठ और लंबी प्रतीक्षा के बाद महेंद्र का जन्म हुआ तो महीनों तक सोहर गवाने का सिलसिला चलता रहा था। मंदिर में भजन-कीर्तन और भंडारे की भी धूम रही। किन्नरों के गीत-संगीत और पवँरियों के पवँरि भी गूँजते रहे थे। पत्थर पर दूब जमने का मुहावरा जो चरितार्थ हुआ था!

मिश्रवलिया गाँव में ब्राह्मणों की तादाद सर्वाधिक थी, आज भी उन्हीं का बाहुल्य है, पर अन्य जाति के लोग भी सामाजिक समरसता और भाईचारे के साथ गाँव में रहते आ रहे हैं। गाँव के बीचो-बीच अवस्थित एक जोड़ा मंदिर और हनुमान जी का अखाड़ा सबके आकर्षण का केंद्र हुआ करता था। मंदिर में जहाँ विभिन्न रामायण मंडलियों की ओर से संकीर्तन, गीत-गवनई के दौर चलते रहते थे, वहीं अखाड़े में पहलवानी के गुर सिखाए जाते थे।

व्यक्तित्व के विविध आयाम

बालक महेंद्र का बचपन लाड़-प्यार में बीता, पर ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते ज़रूरत से ज्यादा ममत्व-दुलार ने मनमौजी बना दिया। उनकी स्कूली पढ़ाई का कहीं ज़िक्र नहीं मिलता। हालाँकि 'मसि-कागद छुओ नहीं, कलम गह्यो नहिं हाथ' वाली स्थिति नहीं थी, मगर विद्यालयी शिक्षा न के बराबर ही हासिल हुई थी। बहुत डाँट-डपट के बाद उनका दाख़िला नान्हू मिश्र के संस्कृत विद्यालय में करवाया गया था, पर वहाँ भी पढ़ाई में उनका मन कतई नहीं रमता था।

पंडित जी संस्कृत के प्रकांड विद्वान माने जाते थे। उन्होंने महेंद्र को पढ़ाने की हरसंभव कोशिश की। पर वहाँ संस्कृत के श्लोक और धातु रूप रटते हुए बच्चे, महेंद्र को रट्टू तोते-से प्रतीत होते थे। फलतः आहिस्ता-आहिस्ता वहाँ से उनका मोहभंग होता चला गया। उनका बाल-मन तो रमता था हनुमान जी के अखाड़े में और गीत-गवनई की महफ़िलों में। वहीं से गाने-बजाने की अभिरुचि को नए-नए पंख लगने लगे थे।

हाँ, इतना जरूर था कि गुरुजी जब ऊँची कक्षा के छात्रों को *अभिज्ञान शाकुंतलम्, रघुवंशम्, ऋतु संहारम्* आदि पढ़ाया करते तो महेंद्र मिसिर भी अभिभूत होकर चाव से उनका रसास्वादन किया करते थे। खास तौर से शृंगार, प्रकृति और भक्ति की त्रिवेणी में वह अक्सर गोते लगाया करते थे। आगे चलकर उनकी रचनाओं पर इसका प्रभाव भी पड़ा था। संस्कृत के श्लोक व तत्सम शब्दों के यत्र-तत्र प्रयोग परोक्ष रूप से संस्कृत साहित्य के प्रभाव के ही परिणाम थे।

चूँकि पिताजी की छपरा के नामी-गिरामी ज़मींदार हलिवंत सहाय से काफ़ी नज़दीकी थी, अतः उस नज़दीकी की बदौलत छोटी-मोटी ज़मींदारी हासिल हो गई थी। इलाके में वह खाता-पीता संभ्रांत परिवार माना जाता था। अंग्रेजों के प्रिय हलिवंत सहाय न सिर्फ़ नामी ज़मींदार थे, बल्कि कचहरी के मशहूर मोख़्तार भी थे और उन्हें समूचा साम्राज्य अंग्रेज अधिकारी रिवेल साहब की कृपा से हासिल हुआ था। कभी अफीम के एजेंट रहे रिवेल साहब पत्नी की मृत्यु के बाद जनसेवा में इस कदर लिप्त हुए कि उन्होंने तमाम कारोबार और दौलत हलिवंत सहाय को सुपुर्द कर दी थी और आख़िरी साँस तक भारतीय समाज की सेवा को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाए रखा। वह स्थान उन्हीं के नाम पर *रिवेलगंज* (अब रिविलगंज) के रूप में मशहूर हुआ। ज़मींदार हलिवंत सहाय के वसूली क्षेत्र (वसूलात) में काहीं-मिश्रवलिया भी आता था। कुछ लोग शिवशंकर मिसिर को हलिवंत सहाय के दोस्त के रूप में याद करते हैं तो कुछेक उनके घर पूजा-पाठ करानेवाले पुजारी और पुरोहित के तौर पर। बहरहाल, सहाय जी की दरियादिली की बदौलत मिसिर जी का परिवार खुशहाल ज़िंदगी जी रहा था।

बाल्यावस्था में ही महेंद्र मिसिर गाँव के मंदिर हनुमान जी के अखाड़े में कुश्ती देखकर रोमांचित हो उठते थे। मंदिर में आए दिन आयोजित होनेवाले संकीर्तन और रामायण-गायन ने भी उनका दिल जीत लिया था। फिर तो उनका मन गाँव के हनुमान जी के अखाड़े में कुश्ती लड़ने, दाँव-पेंच सीखने और विभिन्न मंडलियों के भजन-कीर्तन व गीत-गवनई में ही रमने लगा था। घुमक्कड़ी वृत्ति घर कर गई थी। आशुकवित्व का गुण सर चढ़कर बोलने लगा था। नए-नए लतीफे गढ़ने, हाज़िरजवाबी और कथा-प्रसंगों की रोचक प्रस्तुति की कला में भी वह दक्ष हो गए थे। फिर क्या था! कुश्ती लड़ने, दंगल करवाने, घूम-घूमकर रामायण गाने, लोकधुनों पर नए-नए गीत रचने और संगीत के गुर सीखने में ही उनका सारा समय गुजरने लगा। किसी उस्ताद की शरण में न जाकर उन्होंने

अपने भीतर छिपी जन्मजात प्रतिभा को उजागर करने तथा निखारने का बीड़ा उठाया और यहीं से उनके गीत-संगीत की साधना रंग लाने लगी।

मिसिर जी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी ख़ासियत यह थी कि वह जो भी ठान लेते, उसे कर दिखाकर ही दम लेते थे। जब घुड़सवारी का शौक चर्राया तो चंद दिनों में ही इलाके के नामी-गिरामी मँजे घुड़सवारों में उनकी गिनती होने लगी। घोड़े भी ऐसे-वैसे नहीं। वह विकसित नस्ल के तेज-तर्रार घोड़े की ही सवारी किया करते थे। घुड़दौड़ में उनके घोड़े की चाल, कलाबाजी और मिसिर जी का कमाल देखते ही बनता था। दर्शक रोमांचित हो, दाँतों तले उँगली दबाने को मजबूर हो जाया करते थे।

छह फुट के मिसिर जी की कड़कदार कटीली मूँछें, गठीली-सजीली देहयष्टि और छरहरा बदन पहलवानी की बदौलत और भी निखर उठा था। धोबी पाट और गदहलोट दाँव में उन्हें महारत हासिल थी। लँगोट धारण कर जब वह अखाड़े में उतरते तो दिग्गज पहलवानों के भी होश उड़ जाते थे। होश सँभालते ही अखाड़े की कुश्ती को देख-परखकर उन्होंने ऐसे-ऐसे गुरों को आत्मसात कर लिया था कि मशहूर पहलवान को भी धूल चटाते देर नहीं लगती थी। सिर्फ़ कुश्ती-पहलवानी-घुड़सवारी में ही नहीं, बल्कि मुग्दर और लाठी भाँजने की कलाबाजी में भी वैसी ही दक्षता। लाठी-गदा भाँजकर करतब दिखाने की उनकी कला से ही नियमित रियाज, चुस्ती-फुर्ती और ऊर्जा का अंदाज़ा लगाया जा सकता था। आहिस्ता-आहिस्ता लोक में गहरी पैठ बनाते हुए उन्होंने अपने जादुई करिश्मों से युवा पीढ़ी का नायकत्व हासिल कर लिया था। लेखक अविनाश नागदंश के शब्दों में—'धीरे-धीरे इस सुकंठ गायक की शोहरत गाँव की सीमा लाँघकर सारे जवार में फैल गई। इलाके के महत्त्वपूर्ण आयोजन उसके बिना अधूरे माने जाने लगे। अखाड़े में लाल लँगोट पहनकर रोज सैकड़ों दण्ड-बैठक पेलने और मुग्दर भाँजनेवाले इस नौजवान से हाथ मिलाने वाला कोई दूसरा पहलवान भी नहीं रहा। महावीरी पूजा के वक़्त जब मिश्रवलिया का अखाड़ा निकलता तो उसमें महेंद्र मिसिर का गदा भाँजने और लाठी चलाने का कौशल देखने के लिए संपूर्ण जवार के बच्चे-बूढ़े और मर्द जुट जाते। छह फुट के लंबे-तगड़े कसरती बदन और अत्यंत सुदर्शन व्यक्तित्व के धनी महेंद्र मिसिर अपने इन अद्भुत गुणों के कारण शीघ्र ही मिश्रवलिया एवं आसपास के गाँवों के युवकों के अघोषित नायक बन गए।'

आशुकवित्व और हाज़िरजवाबी के लिए मशहूर महेंद्र मिसिर ने गीत-संगीत

के माध्यम से जो शोहरत हासिल की थी, वह अभूतपूर्व थी। पहला गीत जो उन्होंने लिखा वह शिव-आराधना पर केंद्रित था। गाँव के शिवाले में जब उन्होंने उसकी संगीतमय प्रस्तुति की, तो तमाम श्रोता मंत्रमुग्ध हो गए थे। फिर तो महेंद्र ने यह अटल प्रतिज्ञा कर ली थी कि वह आजीवन स्वरचित गीत ही गाएँगे और जीवनभर उन्होंने इसका निर्वाह भी किया। हालाँकि न तो उन्हें गीत-संगीत विरासत में मिला था, न कोई ऐसा उस्ताद ही था, जो उन्हें इन कलाओं में पारंगत करता। तथापि उन्होंने अपना निर्माण खुद किया था और लेखन, गायन व वादन के क्षेत्र में इतिहास रच दिया था। न कोई स्कूली शिक्षा, न शास्त्रीयता का गहन अध्ययन। सब कुछ उन्होंने वाचिक परंपरा में देख-सुनकर और अनुभव से हासिल किया था। आचार्य पांडेय कपिल और महेश्वराचार्य का मानना है कि 'पकड़ी' के पं. रामनारायण मिश्र महेंद्र मिसिर के काव्यगुरु थे जिनकी प्रेरणा से उन्होंने गीत-संगीत में महारत हासिल की थी। मगर डॉ. जवाहर सिंह यह नहीं मानते। इसके मूल में वह मिसिर जी की जन्मजात प्रतिभा और विभिन्न विद्वानों की सोहबत का रचनात्मक प्रभाव मानते हैं। उन्होंने कबीर से महेंद्र की तुलना करते हुए लिखा है—'उनके बहुआयामी जीवन, बहुक्षेत्रीय क्रियाशीलता और बहु विधात्मक रचनाशीलता को देखते हुए यह कहना कठिन हो जाता है कि उनके व्यक्तित्व का मूल या केंद्रीय स्वरूप क्या था। अल्प विद्यालयी शिक्षा के बावजूद और संगीत के क्षेत्र में किसी विधिवत प्रशिक्षण के अभाव में भी उनकी उपलब्धियों को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि उनमें जन्मजात अपूर्व मेधा थी। जैसे *मसि कागद छुयो नहीं कलम गह्यो नहिं हाथ* की स्वीकारोक्ति करने वाले संत कबीर ने ज्ञान, योग, भक्ति और आध्यात्मिक मत-मतांतरों के मूलभूत अंतर्विरोधों को केवल संत-संगति में दुनिया को देख-समझकर प्राप्त ज्ञान के आधार पर बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ पंडितों-ज्ञानियों को ललकार दिया था, वैसे ही मिसिर जी ने भी विद्वानों, संगीतज्ञों, पंडितों की संगति में रहते-रहते और अपनी जन्मजात प्रतिभा और मेधा के बल पर छंद, अलंकार, राग-रागिनी, ताल-लय का विशद ज्ञान प्राप्त कर लिया था।'

जब मिसिर जी की लोकप्रियता जंगल की आग-सी फैलने लगी, तो पिता शिवशंकर मिसिर चिन्तित हो उठे थे। उन्होंने बेटे की घुमंतू प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए तेनुआ के महावीर ओझा की पुत्री के साथ उसकी शादी कर दी। पर दुर्भाग्यवश चंद वर्ष के बाद ही पत्नी का निधन हो गया। फिर दूसरी शादी रचाई गई। इस प्रकार, बारी-बारी से दो पत्नियाँ मिसिर जी के जीवन में आईं—लछमीना देवी और परेखा देवी। उनके इकलौते पुत्र थे हिकायत मिश्र।

पत्नी मायके की संपत्ति की वारिस थीं और वहीं रहा करती थीं, क्योंकि मिसिर जी की नज़र में वह ख़ूबसूरत न थीं। उसी का परिणाम था कि उनसे विमुख होकर वह पूरी तरह गीत-संगीत को समर्पित हो गए थे। *वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान* की तरह ही महेंद्र मिसिर की मनोव्यथा पूरवी के मर्मस्पर्शी गीतों के रूप में प्रस्फुटित हुई थी।

कोठा से क्रांति तक

पूरवी और अन्य लोकधुनों में रचित मिसिर जी के गीत-संगीत की शोहरत सिर्फ़ जनमानस तक ही नहीं, कोठों पर भी जा पहुँची थी और गायिकाएँ-नर्तकियाँ उनके गीतों की दीवानी हो गई थीं। महेंद्र मिसिर उन्हें विभिन्न अवसरों के लिए अपने गीत सुलभ कराकर गायकी और संगीत का प्रशिक्षण भी दिया करते थे। इस संदर्भ की अंतर्कथा *डॉ. जवाहर सिंह* के शब्दों में छपरा शहर का भगवान बाजार मुहल्ला, जहाँ मिसिर जी का वह मंदिर स्थित था, उन दिनों 'रेड लाइट एरिया' के रूप में बदनाम था। वहाँ सुबह से देर रात तक नर्तकियों-गायिकाओं की नृत्य-गान की महफ़िलें सजा करती थीं। उस समय भोजपुरी भाषी क्षेत्र के उत्तर सामंती समाज में शादी, विवाह के अवसर पर बरात में नृत्य-गीत की महफ़िल सजाना अपनी शान और प्रतिष्ठा के लिए लगभग अनिवार्य था। इसलिए लग्न के महीनों में बनारस, लखनऊ, मुरादाबाद तथा बिहार-बंगाल के छोटे-बड़े शहरों से अच्छी कमाई के उद्देश्य से ढेर सारी नाच-गान वाली तवायफें छपरा में आकर डेरा डाल देती थीं। चूँकि भोजपुरी भाषी क्षेत्र के लोग नृत्य-गीत वाली उन बाराती महफ़िलों में गायिकाओं से भोजपुरी के ही गीत-ग़ज़ल, भजन, कजरी, झूमर, सोहर आदि गाने की फरमाइश किया करते थे, और ऐसे भोजपुरी गीत, ग़ज़ल, भजनों के एकमात्र स्रोत उन दिनों महेंद्र मिसिर ही थे, इसलिए भोजपुरी गीतों और उनके गायन के लिए विशिष्ट ताल-सुर, लय, राग-रागिनी के प्रशिक्षण के लिए भी मिसिर जी की ही शरण में उन्हें जाना पड़ता था। मिसिर जी उन्हें न केवल संगीत की ही शिक्षा मुफ़्त में दिया करते थे, बल्कि अपने लिखे भोजपुरी गीत, ग़ज़ल, ठुमरी तथा विवाह के विभिन्न अवसरों के उपयुक्त स्वरचित लोकगीतात्मक सोहर, झूमर आदि गाकर रियाज भी करवाते थे। यह सारी प्रक्रिया अहैतुक और निःस्वार्थ थी। इसी सिलसिले में गायिकाओं-नर्तकियों के साथ उनका गहरा संपर्क होता था। वे सारी नर्तकियाँ और गायिकाएँ मिसिर जी को अपना कला-गुरु मानती थीं और उनके प्रति अत्यंत श्रद्धा, आदर और पूजा

भाव रखती थीं। यही कारण था कि जब अंग्रेज सरकार ने जाली नोट छापने के अभियोग में मिसिर जी को 'अरेस्ट' किया तो उन लोगों ने सरकार के सामने सामूहिक रूप से अपने सम्माननीय गुरु के वजन के बराबर चाँदी के रुपये लेकर उन्हें दोष-मुक्त कर देने की गुज़ारिश तक की थी। लेकिन सरकार इसके लिए तैयार नहीं हुई थी।'

महेंद्र मिसिर के गीत-संगीत की चर्चा जब हलिवंत सहाय के कानों में गूँजी तो उन्होंने उनसे मिलने की इच्छा जाहिर की थी। इस बीच सुराजी आंदोलन से जुड़े नेताओं से मिसिर जी का संपर्क हो चुका था और उनकी भी चाह थी कि किसी प्रकार से मिसिर जी की पैठ ज़मींदार हलिवंत सहाय के दरबार में हो जाए, ताकि सहाय जी की छत्र-छाया में वह आंदोलन को गति दे सकें और ब्रिटिश सरकार को शक भी न हो। अंधा क्या चाहे—दो आँखें! शिवशंकर मिसिर बेटे महेंद्र के साथ सहाय जी के दरबार में हाज़िर हुए। मिसिर जी की हाज़िरजवाबी, आशुकवित्व और सुदर्शन व्यक्तित्व ने सहाय जी का दिल जीत लिया। जब उन्होंने अपने स्वरचित गीतों की संगीतमय-भावप्रवण प्रस्तुति की तो हलिवंत सहाय इस कदर भावविह्वल हो उठे कि उनकी आँखों से झर-झर आँसू टपकने लगे। गीत की समाप्ति पर उन्होंने दौड़कर मिसिर जी को गले से लगा लिया। यह अनोखा दृश्य देख पिता शिवशंकर मिसिर की आँखें खुशी से छलछला आईं। आहिस्ता-आहिस्ता मिसिर जी और सहाय जी अंतरंग होते चले गए।

महेंद्र मिसिर की प्रतिभा ज़मींदार हलिवंत सहाय के दरबार में दाखिल होकर और भी परवान चढ़ने लगी। सहाय जी से पिताजी की निकटता का लाभ महेंद्र मिसिर को भी मिला और उनके यहाँ आने-जाने और दरबार में स्वरचित गीत गाने का सिलसिला शुरू हो गया। पं. शिवशंकर मिसिर के असामयिक निधन के बाद महेंद्र मिसिर की सहाय जी से अंतरंगता बढ़ती और प्रगाढ़ होती चली गई। युवावस्था में ही सहाय जी की पत्नी दिवंगत हो गई थीं। सहाय जी न सिर्फ़ विधुर थे, बल्कि निःसंतान भी थे। अकूत संपत्ति के स्वामी थे वह। रईसी ठाट-बाट था उनका। फिर तो महफ़िलों, गीत-संगीत और नाच-गान में ही उन्होंने खुद को डुबो दिया। महेंद्र मिसिर ने उनका दिल जीत लिया। अब वह सहायजी के सर्वाधिक विश्वसनीय व अभिन्न मित्र ही नहीं, ट्रस्टी भी बन गए। अनजाने मिसिर जी में भी वह रईसी घर करती चली गई और गीत-संगीत की सर्जना और प्रस्तुति को ही उन्होंने अपने जीवन का मक़सद बना लिया। सुराजी आंदोलन के सेनानियों को भी अपेक्षित सहयोग मिलने लगा।

अब रोज ही महफ़िलें जमतीं, रातें रंगीन होतीं। नामी-गिरामी तवायफें अपने कार्यक्रम पेश करतीं। मगर ज्योंही महेंद्र मिसिर अपने रचे गीत प्रस्तुत करते, सभी श्रोता अपने दाँतों तले उँगुली दबा लेते। गीत और गायन के बेजोड़ नमूने को देख विरोधी भी 'वाह-वाह' करने पर मज़बूर हो जाते। फिर तो मिसिर जी की शोहरत जंगल की आग-सी फैलती-पसरती चली गई।

सर्जनात्मक शक्ति ढेलाबाई

उन्हीं दिनों मुजफ्फरपुर की एक तवायफ की बेटी ढेलाबाई की शोहरत बुलंदियों को छूने लगी थी। आए दिन उसकी ख़ूबसूरती के चर्चे हुआ करते थे। वह जितनी बड़ी गायिका थी, उतनी ही कुशल नृत्यांगना भी थी। ढेलाबाई का मूलनाम गुलज़ारीबाई था और वह अपने समय की मशहूर नृत्यांगना-गायिका मीनाबाई की बेटी थीं। गायकी और नृत्य की कला उन्हें विरासत में प्राप्त हुई थी। कहते हैं कि वह शोहरत की बुलंदियों को इस कदर छूने लगीं कि उनकी गायकी के एक कार्यक्रम में दीवाने दर्शकों-श्रोताओं के बीच ढेला चल गया और उसी दिन से गुलज़ारी बाई अपना मूल नाम खोकर ढेलाबाई के रूप में मशहूर हो गई।

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना से प्रकाशित पच्चीस प्रख्यात स्वर-साधकों के व्यक्तित्व व कला साधना पर केंद्रित ग्रंथ *स्वरगंध* में ढेलाबाई के जीवन पर विस्तार से चर्चा की गई है। कला-मर्मज्ञ गजेंद्र नारायण सिंह ने लिखा है—'ढेलाबाई अपने समय की सुविख्यात गायिका थीं। ख्याल, दादरा, ठुमरी और विशेषकर दादरा गाने में उनकी दक्षता की कई बुजुर्गों तथा संगीतकारों से सुनी चर्चाएँ आज भी दिल को सुकून दे जाती हैं। ठाकुर जयदेव सिंह सरीखे हिंदुस्तानी संगीत के उद्भट विद्वान और मर्मज्ञ ढेलाबाई की गायन-कला के प्रशंसक रहे। आकाशवाणी से प्रसारित वार्ता *मैंने जिन्हें सुना* में ठाकुर साहब ने सिर्फ़ चार विशिष्ट संगीतकारों के नाम गिनाए थे—पं. विष्णु दिगंबर चलुस्कर, उस्ताद अब्दुल करीम खाँ, पं. ओंकारनाथ ठाकुर और ढेलाबाई। ठाकुर जयदेव सिंह ने इस सदी (बीसवीं) के तमाम शीर्षस्थ गाने-बजाने वालों को रू-ब-रू सुना था, जिनमें चार ही उनके बेहद पसंदीदा गवैये थे। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि ढेलाबाई किस स्तर की गायिका थीं। ढेलाबाई दादरे की अन्यतम अदाकारा थीं। वह दादरे में बैठकर भाव भी बताती थीं, लेकिन गायन और भावों की अदाकारी में कहीं भी भोंडापन नहीं झलकता था। गायन के साथ ही अपने आचार-विचार में बड़ी शालीनता बरतती थीं ढेलाबाई। देश के संगीत प्रेमियों में ढेलाबाई की गणना

उच्च कोटि की गायिकाओं में हुआ करती थीं। लंबा कद और छरहरे वदन की हँसमुख, खुशमिज़ाज महिला थीं ढेलावाई। शालीनता की वह प्रतिमूर्ति थीं।

'ढेलावाई के गायन में चीज़ और वंदिश का चयन और आत्मविश्वास का विलक्षण संतुलन हुआ करता था। अपनी कलाकारिता में चमक वरकरार रखने के लिए वह रियाज़ की वड़ी पक्की थीं। नित्य प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में लगातार तीन-चार घंटे अभ्यास करती थीं। खान-पान में परहेज़ और सावधानी सदा रखती थीं। ढेलाबाई की आवाज़ तार स्वरों के टीप पर भी सरसता नहीं छोड़ती थी। अमूमन यह देखा जाता है कि अधिकांश गायक-गायिकाओं का स्वर तार-सप्तक में ऊपर जाकर फट जाता है और कर्कश एवं बेसुरा हो जाता है। लेकिन ढेलाबाई इसकी अपवाद थीं। यह कुदरती देन थी कि उनके स्वर में एक नैसर्गिक चमक सदैव विद्यमान रहती थी। तानें उनकी चोटी पर साफ़, दानेदार और सरस हुआ करती थीं। प्रायः रागेश्वरी, नागेश्वरी, मालकोस, अड़ाना, भिमोटी, विरहम, भैरवी, खमाज, गारा, दुर्गा आदि रागों में गाया करती थीं।'

हलिवंत सहाय ढेलावाई पर इस कदर आसक्त हो गए थे कि उनके दिन का चैन और रातों की नींद लुट गई थी। सच्चे दोस्त महेंद्र मिसिर उनकी ऐसी दशा देखकर वेचैन हो उठे थे। नतीजा यह हुआ कि उन्होंने ढेलाबाई का योजनाबद्ध ढंग से अपहरण करवा लिया था और उसे हलिवंत सहाय को सौंप दिया था। वैसे, इस संबंध में मत-भिन्नता भी है। पांडेय कपिल और रामनाथ पांडेय का यह मानना है कि छपरा शहर के सराय में टिकी बारात में ढेलाबाई का अपहरण हलिवंत सहाय के कारिंदों और लठैतों ने उस वक़्त कर लिया था, जब उनके नृत्य-गायन का कार्यक्रम चल रहा था। महेंद्र मिसिर वहाँ एक रसिक दर्शक के रूप में मौजूद थे। मगर दूसरी ओर, अनामिका तथा जौहर शफियाबादी के अनुसार, सोनपुर के हरिहर क्षेत्र मेले में नाच-गान का कार्यक्रम पेश करती ढेलाबाई को महेंद्र मिसिर और लठैतों ने ज़बरन उठाकर रातो-रात हलिवंत सहाय की कोठी में पहुँचा दिया था। इसके मूल में था—हलिवंत सहाय की नज़रों में अपनी विश्वसनीयता को पुख़्ता करना और सुराजी आंदोलन में निर्भय हो वढ़-चढ़कर हिस्सेदारी।

हालाँकि उन्हें आगे चलकर अपनी इस करनी के लिए बहुत पश्चाताप भी हुआ था, जब सहाय जी दिवंगत हो गए थे और उनके पट्टीदार ढेलावाई को ज़मीन-जायदाद और उसके हक़ से बेदखल करने की साजिश रचने लगे थे। प्रायश्चित स्वरूप मिसिर जी ने उसका हक़ दिलवाने में कोई कसर नहीं छोड़ी

थी और आजीवन उसकी हरसंभव मदद की थी। कहा जाता है कि ढेलाबाई और महेंद्र मिसिर एक-दूसरे के प्रति आसक्त भी थे, मगर वह आसक्ति शरीरी न होकर मानसिक व भावनात्मक स्तर तक ही सीमित थी। मुक़दमेबाज़ी के दौरान जब सारी संपत्ति ज़ब्त कर ली गई थी तो मिसिर जी अपनी छोटी-सी ज़मींदारी की आमदनी से ढेलाबाई की खुलकर सहायता करते रहे थे।

सच तो यह है कि महेंद्र मिसिर के लिए ढेलाबाई सर्जनात्मक शक्ति थीं। उनके सृजनशील व्यक्तित्व के लिए ढेलाबाई की ठीक वैसी ही भूमिका थी, जैसी जयशंकर प्रसाद के लिए सुप्रसिद्ध गायिका सिद्धेश्वरी बाई की थी और भारतेंदु हरिश्चंद्र के लिए मल्लिका व माधवी जैसी नामचीन गायिकाओं की जो भूमिका थी। तभी तो नारी-मन की गुत्थियों की बारीक पड़ताल करने और उन सबको गीत-संगीत की मार्फ़त तरल अभिव्यक्ति देने में उन्हें कामयाबी हासिल हुई थी।

कलकत्ता प्रवास से जेल-यात्रा तक

मगर जब आर्थिक तंगी असह्य होने लगी तो मिसिर जी ने पहले बनारस, फिर कलकत्ता की ओर रुख किया। वहाँ पूरबी गीतों की उनकी संगीतमय प्रस्तुतियों ने नौकरीपेशा और व्यवसाय से जुड़े भोजपुरी भाषियों का दिल जीत लिया। हर तरफ महेंद्र मिसिर की ही चर्चाएँ होने लगीं। उन्हीं दिनों एक अंग्रेज भी उनके गीतों का दीवाना हो गया। एक कार्यक्रम में जब उसने महेंद्र मिसिर को सुना तो अभिभूत हुए बगैर नहीं रह सका। उसने मिसिर जी को गीत-संगीत के एक मंच पर आमंत्रित किया। गीत-नृत्य के उस रसिया अंग्रेज का जन्म इसी देश में हुआ था और उसे बाँग्ला, भोजपुरी की भी अच्छी समझ थी। मिसिर जी ने उससे अपने अर्थाभाव और ढेलाबाई की दारुण दशा की दास्तान कह सुनाई थी। द्रवित होकर अंग्रेज ने गुपचुप तरीके से पूरी तकनीक समझाकर, प्रशिक्षण देकर नोट छापने की एक मशीन मिसिर जी के हवाले कर दी थी और खुद लंदन के लिए रवाना हो गया था।

एक दिन उन्होंने विक्टोरिया मैदान में नेताजी सुभाषचंद्र बोस का भाषण सुना। फिर तो युवक महेंद्र के मन में राष्ट्रभक्ति की भावना और भी हिलोरें लेने लगी। उन्होंने बंगाल के संन्यासी आंदोलन से संबद्ध होकर विद्रोह का बिगुल बजा दिया था।

कुछ लोगों का यह भी मानना है कि क्रांतिकारियों के दल ने कलकत्ता में पहले सरकारी खजाने को लूटा। उसी धन से गुप्त तरीके से नोट छापने वाली

मशीन खरीदी गई। फिर उसे मिसिर जी को सुपुर्द कर दिया गया। अंग्रेजों के ख़ासमख़ास रहे हलिबंत सहाय के विश्वस्त मित्र मिसिर जी जैसे कलाकार पर शक करने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। मगर इस तथ्य की प्रामाणिकता संदिग्ध लगती है।

मिसिर जी अब गाँव लौट आए थे और धनाढ्य बंगाली अंग्रेज के प्रति मन-ही-मन कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए अत्यंत गोपनीय तरीके से नोट छापने का गैरकानूनी धंधा शुरू कर दिया था। देखते-ही-देखते कायापलट हो गई। दो-दो हाथी दरवाजे पर झूमने लगे। ढेलाबाई को भरपूर सहायता मिलने लगी। मंदिर में शानदार ढंग से पूजा होने लगी। हनुमान जी के अखाड़े में नामी-गिरामी पहलवान बुलाए जाने लगे। रामायण-मंडलियों का जमावड़ा होने लगा। गीत-नृत्य की महफ़िलें फिर से आबाद होने लगीं। चुपके-चुपके क्रांतिकारियों को धन मुहैया कराया जाने लगा।

अंग्रेजी शासन की अर्थव्यवस्था को ध्वस्त करने की गरज से ही नोट छापने का धंधा चल रहा था। जब जाली नोटों के व्यापक प्रसार से अंग्रेजी सरकार बौखला उठी तो गुप्तचरों का जाल बिछा दिया। जुलाई-अगस्त, 1920 में खुफ़िया जाँच का सिलसिला शुरू हुआ। सी.आई.डी. इंस्पेक्टर जटाधारी प्रसाद और सुरेंद्रनाथ घोष की अगुवाई में छानबीन गुप्त तरीके से होती रही। जटाधारी प्रसाद तो गोपीचंद बनकर तीन वर्ष तक उनका नौकर रहा और विश्वासपात्र बनकर पूरी जानकारी हासिल कर ली। फिर तो 16 अप्रैल, 1924 (चैत्र अमावस्या) की रात में एक बजे डी.एस.पी. भुवनेश्वर प्रसाद के नेतृत्व में छापा मारकर नोट की गड्डियों और मशीन के साथ महेंद्र मिसिर और उनके पाँचों भाइयों को गिरफ़्तार कर लिया गया। पुलिस दल दानापुर से आया था। गिरफ़्तारी के वक़्त महेंद्र मिसिर सोए हुए थे, जबकि पाँचों भाई और विश्वस्त नौकर गोपीचंद नोट छापने में मशगूल थे।

कहा जाता है कि महेंद्र मिसिर की गिरफ़्तारी की सूचना नामी-गिरामी तवायफों को मिली तो वे सभी तत्काल छपरा कचहरी में जा पहुँचीं। वे सभी बार-बार आरजू-मिन्नत करती रहीं कि महेंद्र मिसिर के वजन के बराबर वे रत्नाभूषण देने को तैयार हैं। अतः उनके सोने-चाँदी के सारे गहने ले लिए जायँ और मिसिर जी को मुक्त कर दिया जाय। इसी बात से अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि उनके लिए उन सबके दिलों में क्या जगह थी।

मामला पहले लोअर कोर्ट, फिर हाईकोर्ट तक पहुँचा

पटना उच्च न्यायालय में मुक़दमे की सुनवाई लगातार तीन माह तक चलती रही। मिसिर जी के वकील थे विप्लवी हेमचंद्र मिश्र और प्रख्यात स्वतंत्रता-सेनानी चितरंजन दास। अंततः दस साल के कारावास की सजा सुनाई गई थी और महेंद्र मिसिर को बक्सर जेल में बंद कर दिया गया था। जब उन्हें जेल ले जाया जा रहा था, तभी गोपीचंद उर्फ जटाधारी प्रसाद ने वहाँ पहुँचकर हाथ जोड़ते हुए क्षमा-याचना की थी और अपनी ड्यूटी की मजबूरी बताते हुए कहा था कि वह किसी अपराध में नहीं, बल्कि देश की सेवा में जेल जा रहे हैं। मगर महेंद्र मिसिर ने उद्वेलित मन से अपने आशुकवित्व का इजहार करते हुए तत्काल कहा था—

'पाकल-पाकल पानवाँ खियवले गोपीचनवा
पिरितिया लगा के ना
मोहे भेजले जेहलखनवाँ रे
पिरितिया लगा के ना!'

विश्वास जीतकर विश्वासघात करनेवाले गोपीचंद को उन्होंने आड़े हाथों लिया था। मगर उनकी सोहबत की बदौलत तुकबंदी करना सीख चुका गोपीचंद अपनी हाज़िरजवाबी का परिचय देते हुए बोल पड़ा था—

'नोटवा जे छापि-छापि गिनिया भँजवलऽ ए महेंदर मिसिर,
ब्रिटिश के कइलऽ हलकान ए महेंदर मिसिर!
सगरे जहनवाँ में कइलऽ बड़ा नाम ए महेंदर मिसिर,
पड़ल बा पुलिसवा से काम ए महेंदर मिसिर!'

मगर फिर तत्काल गोपीचंद ने हाथ जोड़कर कहा था—'बाबा! यह तो आपकी शागिर्दी और सोहबत का असर है। मज़ाक कर रहा था मैं। दरअसल देश के लिए आपके दिल में जो जज़्बा है, मैं उसे सलाम करता हूँ। अपनी ड्यूटी से मजबूर थे हम वरना...हमें खुशी इस बात की है कि देश के लिए आपने बहुत कुछ किया है और आज देश के लिए ही जेल जा रहे हैं।'

बक्सर जेल का जेल अधिकारी मिसिर जी की बहुआयामी प्रतिभा से इस कदर प्रभावित था कि उन्हें अपने आवास पर बुलाकर अक़्सर धर्म-अध्यात्म, साहित्य-संस्कृति और गीत-संगीत की ही चर्चाएँ किया करता था। उनके विलक्षण व्यक्तित्व ने सिर्फ़ जेलर का ही नहीं, बल्कि वहाँ के कर्मचारियों और कैदियों का

भी दिल जीत लिया था। जेलर ने तो उन्हें अपने डेरे में ही रख लिया था। वहाँ मिसिर जी के गीत-संगीत और आध्यात्मिक प्रवचन ने जेलर की पत्नी का भी दिल जीत लिया था। तबला की थाप, हारमोनियम की धुनों पर तरंगित उनके सुमधुर गीतों की अनुगूँज ने उस केंद्रीय कारा का माहौल ही बदलकर रख दिया था। उस कारा में रहकर ही उन्होंने सात खंडों में *अपूर्व रामायण* की रचना कर डाली थी। जेल अधिकारी की अनुशंसा पर उन्हें तीन साल पूर्व ही जेल से मुक्ति मिल गई थी।

महाप्रयाण

सात बरसों के बाद सन् 1931 में महेंद्र मिसिर की जेल से रिहाई हुई थी। गाँव पहुँचने पर उन्हें ढेलाबाई के गंभीर रूप से अस्वस्थ होने की सूचना मिली। फिर वह भागे-भागे छपरा पहुँचे। वहाँ हवेली में ढेलाबाई शायद उन्हीं का इंतजार कर रही थीं। टी.बी. ग्रस्त ढेलाबाई का बदन कंकालवत दिख रहा था। दोनों की आख़िरी मुलाक़ात हुई और ढेलाबाई ने चैन से आख़िरी साँसें लीं।

ढेलाबाई के निधन से मिसिर जी पूरी तरह टूट चुके थे। दोनों एक-दूसरे की प्रेरणा थे। प्रो. राजगृही सिंह ने महेंद्र मिसिर की तुलना आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री से करते हुए लिखा था—'जानकीवल्लभ शास्त्री की शिष्याओं में अनेक वारांगनाएँ थीं। उनका संबंध शास्त्री जी के साथ सिर्फ़ कला का अथवा ज्ञान का रहा था। जल में कमल की तरह उनके बीच शास्त्री जी रहते थे। श्रद्धा और प्रेम के सामने भोग सदा परास्त होता रहा है। मेरी स्पष्ट अवधारणा है कि महेंद्र मिसिर ने उस काल में भी इसी प्रकार की निर्लिप्तता का परिचय दिया था। मिसिर जी के संकटकाल में वारांगनाओं ने जिस उदारता का परिचय दिया था, वह किसी क्षणिक स्वार्थ में लिप्त व्यक्ति के लिए संभव नहीं था।'

अनिनाश नागदंश ने तो मिसिर जी और ढेलाबाई के संबंध को भारतेंदु-चंद्रिका, कृष्ण-मीरा की तरह निष्पाप व बेमिसाल बताया है। उनका मानना है—'महामना भारतेंदु ने अपनी प्रेयसी, बंगाली बाल-विधवा मल्लिका उर्फ चंद्रिका के नाम पर अपनी हरिचंद्र मैगज़ीन का नाम बदलकर *हरिचंद्र चंद्रिका* कर दिया था, पर भोजपुरी के इस भारतेंदु ने तो अपना जीवन ही अपनी मीरा-सी प्रेमदीवानी शिष्या ढेलाबाई को इस तरह अर्पित कर दिया जिसकी मिसाल इतिहास में कहीं ढूँढ़े से नहीं मिलती।'

कारा से छूटने के बाद महेंद्र मिसिर का शेष जीवन संकीर्तन व भक्ति को

ही समर्पित था। नौंटकी शैली में जब सुध-बुध खोकर वह कीर्तन करने लगते तो हजारों की भीड़ मंत्रमुग्ध हो रसास्वादन करती और पूरा वातावरण भक्तिमय एवं संगीतमय हो जाता। रामकथा तथा कृष्ण-कथा से जुड़कर वह गीत-संगीत की मार्फ़त ऐसी सात्विक रसधार बहाते कि दर्शक-श्रोता उसमें अपने आप बहते चले जाते थे। हालाँकि *फुलसुंघी* में *पकड़ी* के पं. राम नारायण मिश्र को उनका काव्य-गुरु बताया गया है, पर उन्होंने कहीं भी इसकी कोई चर्चा नहीं की है। तबला-हारमोनियम सहित सभी वाद्ययंत्रों से रसमाधुरी छलकाने में वह सिद्धहस्त थे, पर अपने उस्ताद वह खुद थे और इस क्षेत्र में भी कोई उनका संगीत-गुरु नहीं था। उनका संपूर्ण जीवन ही अनवरत सृजन, संघर्ष व करुणा का पर्याय था। तभी तो जन-पीर को आत्मसात कर स्त्री की मनोदशाओं को मार्मिकता के साथ उकेरने में उन्हें कामयाबी हासिल हुई थी।

महेंद्र मिसिर ने साढ़े साठ साल की उमर में ढेलाबाई की कोठी में निर्मित शिव मंदिर में 26 अक्टूबर, 1946 (मंगलवार) को अंतिम साँस ली थी—उसी मंदिर में जिसे उन्होंने खुद बनवाया था और जहाँ बैठकर रोज तड़के भैरवी और बिहाग गाया करते थे। आज वह मंदिर ढेलाबाई के मंदिर के नाम से मशहूर है। महज़ आख़िरी आठ दिनों तक वह अस्वस्थ रहे थे, पर उस स्थिति में भी उनका चिंतनशील मन और कवि अंतिम साँस तक सृजनशील रहा। मंगलवार की प्रातःकालीन वेला में बिहाग के बजाय *राम नाम सत्त है* के स्वर गूँजे थे और भैरवी की तान की जगह उस महामानव की अर्थी उठी थी। उन्हें मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था। तभी तो उन्होंने गाँव से सभी परिजनों को छपरा बुला लिया था और अस्वस्थता के बावजूद लगातार भजन-कीर्तन गाते हुए ही महाप्रयाण किया था।

महेंद्र मिसिर के सशरीर गुजर जाने के बावजूद उनसे जुड़ी किंवदंतियों का सिलसिला आज भी थमा नहीं है। झूठी-सच्ची कहानियाँ, नए-पुराने अफ़साने। मगर यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि सदियों बाद भी पूरबी और भोजपुरी का वह अनमोल रतन लोककंठ से फूटकर जन-जन के मन-प्राणों को अहर्निश झंकृत करता रहेगा। लोकधुन पूरबी में रचे उनके अमर गीत लोक साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

सारांशतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि महेंद्र मिसिर की साढ़े साठ वर्षों की उतार-चढ़ाव भरी जीवन-यात्रा एक बहुआयामी विलक्षण व्यक्तित्व की ऐसी जीवन-यात्रा है जिसमें एक ही साथ कई क्षेत्रों में कामयाबी के झंडे गाड़ने और इतिहास रचने की लोमहर्षक कथाएँ किंवदंती-सी जुड़ी व जड़ी हुई हैं।

सृजन-संसार

महेंद्र मिसिर का रचना-कर्म सन् 1910 से आरंभ होकर 1945 तक अहर्निश जारी रहा था। यहाँ तक कि कारावास की सजा भी उनके सृजन के लिए वरदान साबित हुई थी। जेल में रहकर उन्होंने रामकथा पर केंद्रित विभिन्न लोकधुनों, छंदों और राग-रागिनियों में *रामचरित मानस* को आधार बनाकर *अपूर्व रामायण* के सातों कांड रच डाले थे। 1924 से 1931 के बीच रचित *अपूर्व रामायण* भोजपुरी का प्रथम महाकाव्य माना जाता है। उनकी अधिकतर पुस्तकें दूधनाथ पुस्तकालय, सलकिया, हावड़ा और कचौड़ी गली, बनारस से प्रकाशित हुई थीं। चूँकि उन प्रकाशन-संस्थानों का अब कोई अस्तित्व नहीं है, अतः मिसिर जी की कृतियाँ अनुपलब्ध हैं। उनकी पूरी रचनावली प्रकाशन की बाट जोह रही है। मिसिर जी का महाकाव्य *अपूर्व रामायण* महाकवि की हस्तलिपि में उनके वंशजों के पास सुरक्षित है। *अपूर्व रामायण* में मिसिर जी ने अपनी बीस (20) कृतियों की चर्चा की है जिनमें पाँच नाटक भी शामिल हैं। नाटक भी गीत-संगीत से लबलेज़ हैं। उनका विपुल सृजन-संसार निम्नवत है–

1. अपूर्व रामायण (सात खंड)
2. महेंद्र मंजरी (चार भाग में)
3. महेंद्र विनोद
4. महेंद्र दिवाकर
5. महेंद्र प्रभाकर
6. महेंद्र चंद्रिका (तीन भाग में)
7. महेंद्र रत्नावली
8. महेंद्र कुसुमावली
9. महेंद्र मयंक
10. महेंद्र मंगल (चार भाग में)
11. कृष्ण गीतावली

12. महेंद्र प्रभावली
13. भागवत दशम स्कंध
14. भीष्म प्रतिज्ञा
15. श्रीमद्भागवत नाटक संगीत
16. कृष्णार्जुन युद्ध नाटक
17. कंस विध्वंस नाटक
18. हरिश्चंद्र नाटक
19. चीरहरन लीला
20. गोपी विरह नाटक

इनके अलावा उन्होंने असंख्य फुटकर गीतों की रचना की थी। यों तो महेंद्र मिसिर के गीत जन-जन की जुबान और लोकस्वर में थे, पर सौभाग्य से उनके चुनिंदा गीतों का संग्रह *कविवर महेंद्र मिसिर के गीत-संसार* शीर्षक से डॉ. सुरेश कुमार मिश्र के संपादन में अखिल भारतीय भोजपुरी परिषद्, लखनऊ से सन् 2002 में प्रकाशित हुआ। कुल दो सौ सात रचनाओं के इस संग्रह में भक्ति-गीत, प्रेम-शृंगार के गीत, ग़ज़ल, विविध गीत (चार खंडों में) संग्रहीत हैं। इनमें विरह, शृंगार और भक्ति के गीत सर्वाधिक हैं। चूँकि इस संकलन में मिसिर जी के कई मशहूर गीत शामिल नहीं हो पाए थे, अतः डॉ. मिश्र के ही संपादन में उनके तीन सौ सात गीतों का दूसरा संग्रह *महेंद्र मिसिर की प्रतिनिधि कविताएँ* शीर्षक से मेखला प्रकाशन, दिल्ली से सन् 2012 में प्रकाशित हुआ जिसमें भक्तिपरक छिहत्तर, प्रेम-शृंगार के एक सौ साठ गीत, इकतीस ग़ज़लें और चालीस वैविध्यपूर्ण कविताएँ संकलित हैं। उन्होंने *महेंद्र मिसिर—विविध आयाम* शीर्षक से मिसिर जी पर केंद्रित आलेखों के संकलन का संपादन भी किया था। इसके अलावा डॉ. सुरेश कुमार मिश्र ने अपने निर्देशन में *महेंद्र मिसिर—व्यक्ति एवं कृतित्व* विषयक एक शोध-प्रबंध भी तैयार करवाया था।

उपर्युक्त विपुल कृतित्व के बावजूद मिसिर जी को प्रसिद्धि पूरबी गीतों के सम्राट के रूप में ही मिली थी। कलकत्ता, बनारस, मुजफ्फरपुर की तत्कालीन नामी-गिरामी तवायफें उन्हें अपना गुरु मानती थीं और सिर्फ़ उन्हीं के लिखे गीत गाती थीं। एक तरफ उन्हें हारमोनियम, तबला, पखावज, मृदंग, बाँसुरी जैसे अनेक वाद्ययंत्रों पर अधिकार था तो दूसरी ओर ठुमरी, टप्पा, ग़ज़ल, कजरी, दादरा, खेमटा आदि रागों में भी महारत हासिल थी। बतौर गायक वह आजीवन सिर्फ़ खुद के रचे गीत ही गाते रहे। यही वजह है कि उनकी हर रचना

संगीतात्मकता से ओतप्रोत हुआ करती थी, जो सहज ही जन-जन का कंठहार बन जाती थी। उनके पूरबी गीतों में रूमानियत और वियोग की मर्मस्पर्शी छटा देखते ही बनती है। संभवतः ढेलाबाई तथा अन्य तवायफों की व्यथा-कथा से उन्हें ऐसे गीत रचने की प्रेरणा मिली हो। तभी तो वे गीत पत्थर दिलवालों को भी मोम-सा पिघलाने की सामर्थ्य रखते हैं। सही मायने में वह नारी-मन के जादुई चितेरे थे।

मिसिर जी अपने जीवन की तमाम विसंगतियों का धैर्य व साहस के साथ सामना करते हुए जीवन-भर दिल खोलकर लुटाते रहे—गीत-संगीत, धर्म-अध्यात्म, हास-उल्लास, धन-दौलत...और भी बहुत कुछ। अपने निर्माता तो वह खुद थे ही, अन्य कइयों की निर्मिति में भी उनकी अग्रणी भूमिका रही। पर उन्होंने कभी कोई श्रेय लेने के लिए ऐसा इजहार नहीं किया था।

महेंद्र मिसिर अपने जीवनकाल में ही किंवदंती बन गए थे। उन पर अब तक तीन भोजपुरी उपन्यास रचे जा चुके हैं—आचार्य पांडेय कपिल का उपन्यास *फुलसुंघी,* भोजपुरी के पहले उपन्यासकार रामनाथ पांडेय का *महेंदर मिसिर* और जौहर शफियाबादी का *पूर्वी के धाह*। *फुलसुंघी* में जहाँ सच्चे प्रणय के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने की घनीभूत संवेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है, वहीं *महेंदर मिसिर* में बंगाल के संन्यासी आंदोलन से संबद्ध, अंग्रेजी अर्थ-व्यवस्था को ध्वस्त करने वाले राष्ट्रभक्त योद्धा का चरित्र उजागर हुआ है। *पूर्वी के धाह* में उन्हें पूरबी-सम्राट और सुराजी आंदोलन के अग्रदूत के रूप में चित्रित किया गया है।

हिंदी की सुपरिचित कवयित्री डॉ. अनामिका के स्त्री-विमर्श पर केंद्रित उपन्यास *दस द्वारे का पींजरा* में महेंद्र मिसिर और ढेलाबाई जैसी शख़्सियतें भी शामिल हैं।

इन उपन्यासों के अतिरिक्त *कंपनी उस्ताद* शीर्षक से रवींद्र भारती का एक नाटक भी मिसिर जी के जीवन पर लिखा गया था। मगर सच पूछा जाय तो उनके कृतित्व का सार्थक मूल्यांकन होना अब भी बाकी है।

स्वाधीनता-संग्राम में ऐतिहासिक अवदान

देश की आज़ादी की लड़ाई में महेंद्र मिसिर की भूमिका को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता, हालाँकि उन्होंने जीवनपर्यंत इसका श्रेय लेने की कभी कोशिश नहीं की थी। उनका तो संपूर्ण जीवन ही तन-मन-धन से मातृभूमि और मातृभाषा के लिए समर्पित था।

जब राजकुमार शुक्ल ने महात्मा गाँधी को चंपारण बुलाकर नील की खेती करने को मजबूर किसानों के शोषण और अंग्रेजों के अमानुषिक अत्याचार का आँखों देखा हाल सुनाया तो सत्य के अन्वेषी गाँधी ने न सिर्फ़ उस आंदोलन का नेतृत्व किया, बल्कि मुक़दमे में विजयश्री हासिल कर उस अमानवीय तीन कठिया प्रथा का भी खात्मा करवाया। फिर तो स्वतंत्रता-संग्राम का आंदोलन जंगल की आग-सा बिहार के तमाम शहर, कस्बों और गाँवों में फैलता-पसरता चला गया।

उससे भी पहले सन् 1911 में रचित बाबू रघुवीर नारायण का *बटोहिया* गीत स्वाधीनता सेनानियों का कंठहार बन चुका था और उस गीत को भोजपुरी का *वंदेमातरम्* माना जाने लगा था। जब भी उक्त गीत का पाठ होता, हर भारतीय का तन-मन, रोम-रोम पुलकित व रोमांचित हो उठता था। गीत की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

सुंदर सुभूमि भैया भारत के देसवा से
मोरे प्रान बसे हिमखोह रे बटोहिया
एक द्वार घेरे रामा हिम कोतवलवा से
तीन द्वार सिंधु घहरावे रे बटोहिया।
जाहु-जाहु भैया रे बटोही हिंद देखि आउ
जहवाँ कुहुकि कोइलि बोले रे बटोहिया
पवन सुगंध मंद अगर गगनवाँ से
कामिनी विरह-राग गावे रे बटोहिया।